श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी

का

राष्ट्रचिंतन

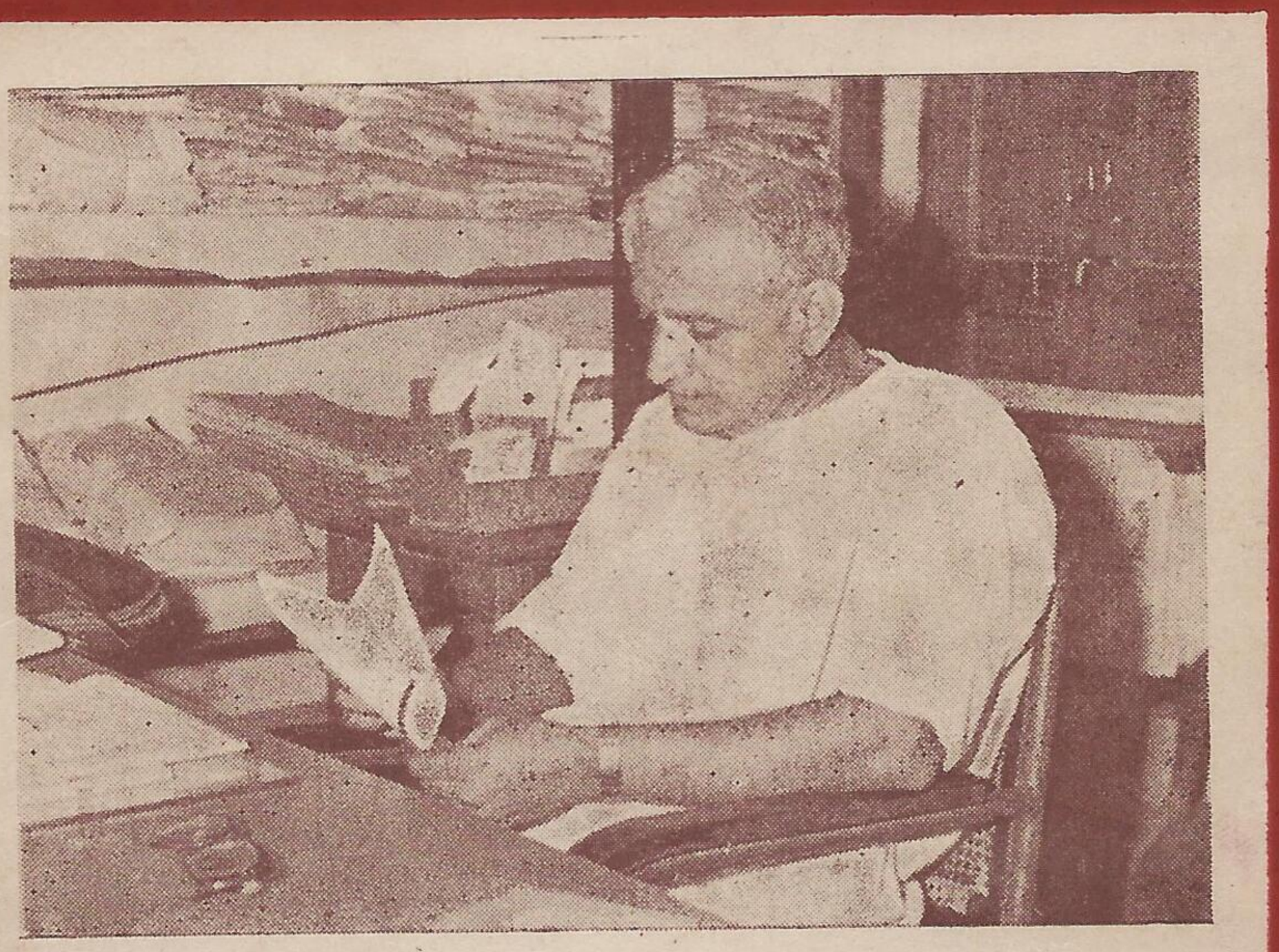

- राष्ट्र का आत्मविश्वास
- हिन्दुत्व की धारणा
- राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का आधार
- कम्युनिज्म अपने ही कसौटी पर
- पिछड़े बंधुओं की समस्या
- संघे शक्तिः

संघे शक्तिः.....

'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' क्या है, इस विषय में यदि समझना हो तो संघ की प्रार्थना का अध्ययन करना चाहिये। संघ का उद्देश्य, नीति एवं कार्य के सम्बन्ध में प्रार्थना में पर्याप्त संकेत प्राप्त होते हैं। "परं वैभवं नेतुम् एतत् स्वराष्ट्रम–" (इस अपने राष्ट्र को वैभव की उच्च कोटि पर पहुंचाना) यह संघ का ध्येय है। उसे प्राप्त करने हेतु "अस्य धर्मस्य संरक्षणम् विधाय–"(इस धर्म की सुरक्षा करते हुए) यह शर्त रखी गयी है। इस शर्त के साथ अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये "विजेत्री संहता कार्य-शक्ति–" (विजयशालिनी संगठित कार्यशक्ति, आवश्यक है। अतः समाज के संगठन का मौलिक कार्य संघ कर रहा है।

संघ स्वयंसेवकों के मन में संघ के उद्देश्य एवं नीति के बारे में संभ्रम नहीं पैदा होता क्योंकि वे शाखा द्वारा नियमित सम्पर्क में रहते हैं। किन्तु स्वयंसेवक कोई कांच के घर में तो रहता नहीं। आसपास के वातावरण का भी प्रभाव उस पर होता ही रहता है। नये-नये लोगों से सम्पर्क करते हुए उन्हें संघ के निकट लाने का प्रयास करना हरेक स्वयंसेवक का काम है, और उसी काम को करते हुए उसके मस्तिष्क पर समाज में विद्यमान वातावरण का कुछ परिणाम तो होगा ही। संघ कार्य अवश्य परिस्थिति-निरपेक्ष हैं, अनुकूल या प्रतिकूल स्थिति में भी संघ कार्य आवश्यक है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि संघ स्वयंसेवक का मन परिस्थिति-सापेक्ष नहीं होगा। वह बुद्धि से संघ कार्य की परिस्थिति-निरपेक्षता को समझता है, किन्तु मन परिस्थिति के झकोरे के साथ दोलायमान होता ही है। इसी दृष्टि से समय-समय पर अपना कार्य, उसका स्वरूप, उसकी स्थिति, कितना हुआ, कितना आगे करना है आदि पर मूल्यांकन करना आवश्यक होता है।

देश में जिस प्रकार का वातावरण होता है, स्वयंसेवकों पर उसका कुछ परिणाम होता हैं। विशेष कर राजनैतिक क्षेत्र में जो कुछ होता है उसके सम्बन्ध में आजकल बड़ी उत्सुकता नजर आती है। मुझे समझ में नहीं आता, कि ऐसा क्यों ? दिल्ली में होते हुए भी मैं राजनैतिक व्यवहार एवं व्यक्तियों के बारे में बहुत जानकारी रखने की विशेष कोशिश नहीं करता। फिर देशभर में स्वयंसेवकों को मात्र इसी बात की इतनी उत्सुकता क्यों ? शायद कहीं कुछ मौलिक धारणा (Basic understanding) में गड़बड़ तो नहीं है ? जानकारी रखना अच्छा है–मात्र राजनीति के बारे में नहीं, विज्ञान तंत्रशास्त्र, नक्षत्र–चन्द्रमा–सूर्य आदि सभी के बारे में जानकारी रखना अच्छा है। साथ-साथ राजनैतिक व्यक्तियों के बारे में भी रखने में कोई आपत्ति नहीं, किन्तु सामान्य

ज्ञान (General Knowledge) के तौर पर। देश का या संघ का भविष्यकाल इन राजनैतिक बातों पर मानो निर्भर हो इस प्रकार की उत्सुकता जब कहीं-कहीं दीखती है, मुझे आश्चर्य होता है। लगता है कि मूल धारणा का स्मरण फिर से करना आवश्यक है।

राजनीति, मात्र एक अंग–

आजकल राजनीति को ही सर्वस्व मानते हुए सत्ता के सहारे ही सब कुछ हो सकता है ऐसा एक विचार प्रबल होता हुआ दिखाई देता है। अतः माना जाता है कि सबसे महत्त्वपूर्ण काम कोई है तो सत्ता कब्जे में लाना। इसलिये शासन अपने हाथ में आया, तो मेरे पितर सरग भये। जब तक शासन पर कब्जा नहीं करते, कुछ नहीं कर पायेंगे, ऐसा एक भ्रम सब दूर नजर आता है। आश्चर्य की बात है कि जो अपने आपको लोकतंत्र के समर्थक बतलाते हैं वे भी इसी धारणा से प्रभावित हैं। वास्तव में लोकतंत्र का मतलब है लोगों का शासन, लोगों के द्वारा शासन। लोकतंत्र और तानाशाही कभी एक साथ चल नहीं सकते। ऐसा होते हुए सत्ता हथियाने का एकमात्र उद्देश्य लेकर चलने वाले, लोकतंत्र की रक्षा कैसे कर सकेंगे ?

क्या शासन सब कुछ करें ?

वैसे ही यह भी धारणा है कि जो कुछ काम होते हैं, शासन के द्वारा ही हो सकेंगे। सब कुछ करना शासन का काम है। किन्तु एक बात सोचने की है कि यदि सब कुछ करने की जिम्मेदारी शासन की है, तो सम्पूर्ण अधिकार भी शासन को ही देने पडेंगे। जिम्मेदारी एवं अधिकार समान मात्रा में (Corresponding, Proportionate) होने चाहिये। राष्ट्र के पुनर्निर्माण की सारी जिम्मेदारी यदि शासन पर आप थोपते हैं, तो सर्वेसर्वा अधिकार भी सरकार को देने चाहिये। और यदि आप सोचते हैं कि सरकार को सारे अधिकार देने से वह तानाशाह बन जावेगी इसलिये सब अधिकार उसे नहीं देना चाहिये, तो फिर सारी जिम्मेदारी भी आपको सरकार पर नहीं थोपना चाहिये। ऐसा नहीं हो सकता कि जिम्मेदारी पूरी सरकार की, लेकिन अधिकार आप के हाथ में। अधिकार भी पूरे सरकार को देना पड़ेंग, और फिर चिल्लाने में मतलब नहीं कि सरकार तानाशाह बनेगी। किन्तु यदि आप सरकार को पूरे अधिकार देने के लिये तैयार नहीं हैं, तो पूरी जिम्मेदारी भी उनपर थोपना गलत है। जिम्मेदारी सारी सरकार की, और अधिकार केवल हमारा, यह नहीं चलेगा। इसलिये सब कुछ सरकार के माध्यम से ही होगा यह धारणा, लोकतंत्र के लिये खतरा पैदा करने वाली है। यह अव्यावहारिक एवं जनता को आलसी बनाने वाला विचार है।

जागृत एवं स्वायत्त जनसंगठन

क्या आज की स्थिति में, चन्द अच्छे विचार के लोग मिनिस्टर बन जाने से देश का उद्धार होगा ? राष्ट्र निर्माण की कुछ प्राथमिक आवश्यकताएं

(Pre-requisites) होतीं हैं। वे जब तक पूरी नहीं होतीं, सरकार को अपना सीमित काम करना भी असम्भव है। उन आवश्यकताओं में से सर्वसाधारण नागरिक का जागृति का स्तर, सबसे महत्वपूर्ण है। वह ऊंचा रहा, तो गड़बड़ करने वाले राजनैतिक नेता को भी अंकुश लगाया जा सकता है, अन्यथा ऊंचे आदमी भी सत्ता प्राप्त होने पर बिगड़ सकते हैं। कहा गया है कि 'सत्ता भ्रष्ट करती है, और अनियन्त्रित सत्ता निरंकुश भ्रष्टता का निर्माण करती हैं। (Power corrupts, and absolute power corrupts absolutely.) यदि जागृत जनमत का अंकुश न हो, पद प्राप्त होनें पर कुछ न कुछ विकृति उत्पन्न होना सर्वसाधारण व्यक्ति के लिये सहज स्वाभाविक है। भगवान कृष्ण, राजा जनक, पांचवा चार्ल्स जैसे राजर्षि अपवाद स्वरूप ही होंगे, किन्तु वह नियम नहीं है। दूसरी मौलिक आवश्यकता होती है, ऐसे जागृत लोगों के स्वायत्त स्वयंशासित जन संगठन (Autonomous self-governed mass organisations), राष्ट्रीय जागृति का स्तर ऊंचा रखने वाले लोगों का जन संगठन, जो किसी स्वार्थी तत्व (vested interests) के दबाव में नहीं है। ऐसे ही संगठन शासन चलाने वाले व्यक्तियों के व्यवहार पर अंकुश रख पायेंगे। शासन एवं सत्ता सम्हालने वाले या तो स्वयं ध्येयवादी हों, उच्च ध्येय की प्राप्ति हेतु शासन के पदाधिकार को मात्र एक साधन के रूप में मानने वाले हों, या फिर उन पर ऐसे जन संगठनों का उचित प्रभाव हो, जो उन्हें सही ढंग से चलने के लिये बाध्य करें।

ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ता–समूह

शासन में अच्छे आदर्शवादी लोग पहुंचने पर भी वे जागृत ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ताओं के अभाव में किसी भी लोकनीति का क्रियान्वयन कर नहीं सकते। क्योंकि सारी कार्यवाही केवल नौकरशाही (Beaurocracy) के आधार पर सफल होना असम्भव है। सरकारें बदल जायें, तो भी यह नौकरशाही जैसे थी वैसे ही रहती है। 'अफसरशाही तानाशाही' (Beaurocratic Authoritism) की पकड़ प्रशासन पर इतनी मजबूत होती है कि, अपवाद छोड़कर, केवल मिनिस्टर बनने से कोई कुछ कर नहीं पाता। योग्यता रखने वाला, अध्ययन करने वाला, मेहनती मिनिस्टर कुछ मात्रा में तो नौकरशाही पर पकड़ पा सकता है, किन्तु हरेक के लिये यह सम्भव नहीं। अतएव प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र में प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर ध्येयवादी कार्यकर्ताओं के समूह (cadres) उपलब्ध हों, तभी शासक भी प्रशासन द्वारा कुछ ठोस कार्य करवा पायेंगे।

नैतिक नेतृत्व सर्वोपरि

भारत में समाज का नेतृत्व शासकों ने कभी नहीं किया। यह बात आप और कहीं नहीं पायेंगे। शासकीय सत्ताधारी लोगों को समाज ने 'शासकीय नेता' माना, अर्थसत्ताधारियों को 'आर्थिक नेता' समझा, लेकिन दोनों से श्रेष्ठ माने गये 'नैतिक नेता', जिनकी नीतिमत्ता, चारित्र्य, निस्वार्थ जीवन, परोपकार बुद्धि, समाज के प्रति आत्मीयता के कारण वे समाज के विश्वासपात्र बने। इस तरह के नैतिक नेताओं के ही प्रभुत्व के कारण भारत हजारों साल से बराबर राष्ट्र के नाते जीवित रहता आया है। जहां-जहां सरकार ही समाज जीवन का केन्द्र बिन्दु बनी, किसी कारण सरकार–संस्था टूटने पर

वह समाज जीवन भी टूट गया, समाप्त हो गया। इस प्रक्रिया में कई राष्ट्र संसार में समाप्त हुए, किन्तु हमारा राष्ट्र जीवित है, क्योंकि यहां का समाज जीवन मात्र शासन के ऊपर अवलम्बित नहीं रहा। शासकीय एवं आर्थिक सत्ता के ऊपर भी हमारे यहां नैतिक ऋषियों का प्रभुत्व रहा। आज भी इन मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हमें करना होगी, यदि हम राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने निकले हैं। यही अपना हिन्दु विचार है।

संघ से विरोध क्यों ?

राष्ट्र की 'विजेत्री संहता कार्यशक्ति' ही राष्ट्रनिर्माण का आधार होगी, न कि कोई शासन–सत्ता या अर्थसत्ता। कोई पूछते हैं कि जब संघ इतना मौलिक कार्य करने चला है, शासकों द्वारा उस पर प्रतिबन्ध एवं तरह-तरह के बन्धन डालने जैसे प्रयास क्यों किये जाते हैं ? इस के दो कारण हैं। हिन्दु विचार रखने वाली और भी कई संस्थाएं हैं। संघ से भी अधिक एकान्तिक तीव्रता (extreme) से बोलने वाले और भी लोग हैं। किन्तु उन पर प्रतिबन्ध लगाने का नहीं सोचा जाता, क्योंकि उनके साथ कोई शक्ति नहीं है। संघ शक्तिहीन होता तो उसकी कोई दखल भी नहीं देता। किन्तु संघ की शक्ति उपेक्षा करनेयोग्य कम नहीं। दूसरा यह भी कारण है कि पर्याप्त मात्रा में संघ की शक्ति इतनी बढ़ी नहीं है, ताकि कोई उसके बारे में गलत बात करने की, झूठे आरोप लगाने की हिम्मत न कर पावें। ऐसी कुछ बीच की स्थिति होने के कारण संघ का विरोध होता है। किन्तु चिन्ता की कोई बात नहीं। इस स्थिति से आगे बढ़ने हेतु शीघ्रता से और एकाग्रता से हमें अपनी शक्ति बढ़ाने पर जुट जाना चाहिए। क्योंकि यह कार्य राष्ट्र के पुनर्निर्माण की नींव के रूप में आवश्यक जागृति पैदा करने का ईश्वरीय कार्य है। इसे आत्मविश्वास के साथ करना होगा, सत्ताश्रय के आधार पर नहीं। कोई भी जनसंगठन यदि शासकों के आधार से चलता है, किसी कारण से वे शासक टूटने पर वह संगठन भी लड़खड़ा जाता है। जनतंत्र में सत्तापक्ष बदलेंगे, राजनेता बदलेंगे। क्या हमें उन पर अपना कार्य निर्भर रखना उचित होगा ?

आत्मविश्वास से कार्य करें

वास्तव में राष्ट्रनिर्माण का काम किसी राजशक्ति के सहारे कभी होता नहीं। वह सम्पन्न होता है जनसंगठन की ताकत पर। वह ताकत इतनी बड़ी मात्रा में हमें खड़ी करना है कि वह शासन–निरपेक्षता से अपने कार्य में अग्रसर हो। कोई भी शासन, कोई भी दल, कोई भी मंत्रिमण्डल रहे, राष्ट्रनिर्माण के मौलिक कार्य में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न करने का विचार भी उनके मन में न आवे, इतनी मजबूत शक्ति हम खड़ी करेंगे यह आत्मविश्वास हमारे हृदय में होना चाहिये। वह न होने से, फिर हमारे मन में राजनैतिक घटनाओं एवं उथल-पुथल के कारण कमजोरी आती है, उनकी चिन्ता हम अधिक करने लगते हैं, और 'दक्ष-आरम की कम।

'दक्ष-आरम' की चिन्ता अधिक करें

संघ-कार्य की, संघ-वातावरण की चिन्ता हमें अधिक करना चाहिये। संघ-वातावरण की निर्मिति का रहस्य है परस्पर-आत्मीयता। शाखा कार्यक्रम के पश्चात् आपस में मिलना, कौन आये कौन नहीं आये इसकी पूछतांछ करना, कोई स्वयंसेवक या

उसके परिवार में कोई बीमार हो उसे मिलना, आवश्यक सहायता आदि की व्यवस्था करना इस प्रकार की बातें जहां होतीं हैं, वहीं शाखा संघ की मानी जायगी। वीकिर-१, २, ३, ४ होते ही यदि राजनीति की या और कोई गपशप शुरू होती है, उस शाखा में 'संघ' कहां ? ऐसी शाखा के स्वयंसेवक भी आत्मविश्वासहीन बनते जायेंगे। बाहरी परिस्थिति से संघ का कार्य निरपेक्ष रहने का अर्थ है 'संगठन' की यह प्रक्रिया नजर से ओझल न होने देना।

कई बार पूछा जाता है, 'आप देश में घूमते रहते हैं, बताइये संघ की शक्ति कितनी है ? कितनी बढ़ी ? या कम हुई ?' क्या संघशक्ति पर्याप्त बढ़ी है ऐसा मुझसे उत्तर पाने पर आप घर जा कर सोना चाहते हैं कि अब कुछ करना बाकी नहीं ? वास्तव में पूछने वाले का मन्तव्य होता है संघ पर जो भिन्न-भिन्न प्रकार के आक्रमण, टीकाटिप्पणी, विरोध आदि होते हैं उन के सन्दर्भ में संघ-शक्ति की मात्रा को जानने का।

असली राष्ट्र-विरोधक कौन ?

मैं आपको आगाह करना चाहूंगा कि समाचारपत्रों में जो लेख, भाषण आदि आदि संघ विरोध में आते रहते हैं, उनपर आप मत जाइये। वास्तविक विरोध का वह चित्र नहीं है। संघ के राष्ट्रनिर्माण के कार्य में जो प्रबल विरोध करते हैं, उनके कोई स्टेटमेंट्स समाचारपत्रों में नहीं आते। संघ को समाप्त करने के उनके प्रयास बड़ी योजना से चल रहे हैं। वे अपना भी संगठन संघ विरोध में खड़ा करने का प्रयास कर रहे हैं। विचार प्रणाली एवं संगठन प्रणाली के दोनों मोर्चों पर वे संघ को परास्त करने की सुनियोजित ढंग से कोशिश कर रहे हैं। समाचार पत्रों में उनके नाम नहीं आते, भाषण नहीं छपते, स्टेटमेंट्स् नहीं दिये जाते। उनके प्रति हमें अधिक सजगता से ध्यान देना आवश्यक है। आप समझ सकते हैं कि ये तत्व विदेशी विचारधारा को भारत में स्थिरता एवं लोकप्रियता प्राप्त कराने की दृष्टि से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जन संगठन खड़ा करने के प्रयास में हैं। हमें वास्तविक आव्हान (Challenge) तो इन्हीं तत्वों का है। हमें चिन्ता करना है उनके प्रचार की, पत्रकारों की, या स्टेट्मेंट देने वालों की नहीं। और फिर हमारी शक्ति का मूल्यांकन करना चाहिये।

(१) सिद्धान्तों की आन्तरिक शक्ति

संघ शक्ति की वर्तमान स्थिति के बारे में जानने की उत्सुकता होती है, तो कौनसे मापदण्ड से शक्ति का अन्दाज लगाया जा सकता है ? केवल संख्या के, बहुमत के मापदण्ड से किसी विचार की श्रेष्ठता को नापा नहीं जा सकता। लोकतंत्र में संख्या का महत्व होता है, चुनाव बहुमत के आधार पर जीते जाते हैं। शायद इसी दृष्टि से संघ की भी संख्या पूछी जाती है। वास्तव में संघ-विचार एक स्थायी सिद्धान्त है जो किसी राष्ट्र के पुनर्निर्माण की नींव है। उसकी सत्यता आन्तरिक शक्ति (Inherent strength) पर निर्भर है, मात्र संख्या बल पर नहीं।

जैसा कि पहले मैंने बताया था, बहुत पहले से यूरोप में समझा जाता था कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य उसके चक्कर काटता है। इस धारणा के पीछे बहुमत की-

मानो सार्वमत की मान्यता थी। अकेले गैलिलियो ने कहा, 'सूर्य केन्द्र में है और पृथ्वी उसके चक्कर काटती है।' किन्तु आगे चलकर उसी के अल्पमत सिद्धान्त को सारी दुनिया ने माना। उस सिद्धान्त की निजी शक्ति के कारण ही वह सफल सिद्ध हुआ, संख्या के आधार पर नहीं।

महात्मा गांधी से किसी ने पूछा,—'राजनीति में आप अनशन, रामधुन, धर्म, संस्कृति, रामराज्य आदि बातों को क्यों लाते हो? इनका राजनीति से क्या सम्बन्ध?' महात्माजी ने कहा, 'देखो, रोम के साम्राज्य का सम्राट था ज्युलियस सीझर। उसके पीछे सम्पूर्ण साम्राज्य की शक्ति थी। असंख्य आदमी थे। अब सोचो, ईसाई मत के संस्थापक जीझस ख्राइस्ट थे, उनके मात्र बारह शिष्य थे। उनमें से भी एक गद्दार निकला। जीझस ख्राईस्ट को भी सूली पर चढ़ाया गया। आज सम्राट सीझर के पीछे कोई बचा नहीं, किन्तु केवल ग्यारह शिष्यों के नेता ईसा मसीह के करोड़ों शिष्य संसार भर में फैले हुए हैं। आज किसको विजयी कहोगे? केवल राजनीति करने वाले सम्राट सीझर को, या स्थायी नैतिक बातें रखने वाले ईसा मसीह को?' महात्मा जी का यह उत्तर हमारे विचार से बहुत संगत है।

साक्रेटिस पर आरोप लगाया गया कि यह झूठा है, युवा पीढ़ी को गुमराह करता है। इसी बात पर उसे हेमलाक नाम का विष जबरदस्ती पिलाकर मारा गया। उस समय उन ७–८ युवकों को छोड़कर सारा ग्रीस देश उसके विरुद्ध था। उसे विष पिलाने वाले का नाम भी कोई नहीं जानता, किन्तु साक्रेटिस के गहन सिद्धान्तों को सारी दुनिया मानती है।

अग्नि का गुण है उष्णता एवं प्रकाश देना। सर्वसत्ताधारी भारतीय लोकसभा में यदि सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया गया कि भविष्य में अग्नि अपना स्वभाव बदलकर ठंड एवं अन्धकार प्रदान करेगा, क्या परिणाम होगा? उस प्रस्ताव के कारण यदि कोई संविधान-पण्डित अग्नि को आलिंगन देने चला, तो उस का हाल क्या होगा? बहुमत के प्रस्ताव से अग्नि अपना गुणधर्म बदलने वाला नहीं, क्योंकि वह उसकी आन्तरिक शक्ति है।

उपरोक्त सभी उदाहरणों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सिद्धान्तों की महत्ता उन पर चलने वालों की संख्या पर नहीं, उनकी अपनी अंगभूत शक्ति पर निर्भर करती है।

(२) कार्य-पद्धति की निजी शक्ति

वैसे ही उन सिद्धान्तों को चरितार्थ करने हेतु बनायी गई कार्यपद्धति के विषय में भी देखना चाहिये कि क्या उसमें भी ऐसी कोई आन्तरिक शक्ति है? मैं अपने ५० से भी अधिक वर्षों के अनुभव से कह सकता हूं कि अपने संघ की कार्यपद्धति संपूर्ण समाज का संगठन खड़ा करते हुए, विजेत्री संहता कार्यशक्ति का निर्माण करने में स्वयं पूर्ण है। इसे सुचारू रूप से अपनाने पर हमें किसी दूसरे पूरक (Supplimentary) कार्यपद्धति की आवश्यकता नहीं है। दूसरी बात, किन्हीं अन्य आकर्षणों के कारण यदि हम इस पद्धति को छोड़ दें, अन्य कोई विकल्प नहीं है जो हमें उसी गन्तव्य स्थान पर पहुंचा

सकेगा, जहां इस कार्यपद्धति द्वारा हम राष्ट्र को पहुंचाना चाहते हैं। इस प्रकार यह कार्यपद्धति स्वयंपूर्ण है, और एकमात्र है। "एषः पन्थाः न विद्यते अयनाय—" इस प्रकार हमारे इस कार्यपद्धति की भी आन्तरिक शक्ति मजबूत एवं सुदृढ़ है।

अतः इस संगठन का मूल्यांकन किस मापदण्ड से किया जाय। ? वैसे किसी की व्यक्तिगत शक्ति भी सभी परिस्थितियों में समान नहीं होती। मामूली ठंड से डरने वाला स्वयंसेवक बड़े सबेरे शाखा जाते हुए ठंड की चिंता न करते हुए निकल पड़ता है। उसी की शक्ति के दो स्तर बन जाते हैं। खाना बनाते हुए हाथ जलने से घबड़ाने वाली महिला घर में आग लगने पर उस में फंसे हुए अपने बच्चे को सुरक्षित बचा लेने के लिए उसी आग में कूद पड़ती है। इस प्रकार व्यक्तिगत शक्ति का भी स्तर समय के अनुसार अलग-अलग होता है। एकत्रित हुए ५०० व्यक्तियों की सामूहिक शक्ति का भी स्तर उनके उद्देश्य के आधार पर भिन्न भिन्न होगा। बाजार में आए हुए ५०० व्यक्तियों, और संघ स्थान पर आये हुए ५०० व्यक्तियों की सामूहिक शक्ति का स्तर एक जैसा हो नहीं सकता। संख्या समान होगी, किंतु बाजार में इकठ्ठा व्यक्तियों का व्यक्तिमत्व (Identity), उन का अहंकार, उनके उद्देश्य भिन्न-भिन्न होंगे। उनमें से कोई शक्ति का निर्माण नहीं होता। संघ स्थान पर एकत्रित स्वयंसेवक अपना अहं दूर रख कर 'हम सब एक है' इस भाव से आपसी प्रेम के आधार पर संगठन करते हैं, उनकी एक शक्ति बन जाती है। सब के सामूहिक अहंकार से एक संघटन बनता है (Organisation is the ego of all, put together)। 'संगठन', और 'भीड़' में यही मौलिक अन्तर होता है।

(३) संगठन की एकात्म शक्ति

'भीड' एक मिश्रण (Mixture) मात्र होता है। सफेद नमक, सफेद शक्कर और सफेद रेता एकत्रित कर देने से कोई एकात्म चीज नहीं बनती। क्योंकि तीनों एक जैसे दीखने पर भी अपना-अपना गुण धर्म त्यागते नहीं। उनकी सम्मिलित शक्ति बजन आदि से शायद जोड़ लगा कर नापी जा सकेगी, किंतु इससे अधिक नहीं। जब दो चीजें अपना-अपना अलगाव त्याग कर सम्पूर्णतः एक हो जाती हैं (Compound) और उस में से जब तीसरी एकात्म चीज पैदा हो जाती है, तब उस तीसरी चोज की शक्ति, केवल दो मूल चीजों की शक्ति के जोड़ से कहीं अधिक बन जाती है। बीजगणित में एक बड़ा मौलिक सिद्धांत आता है। दो नेता 'अ' और 'ब' मानो एकत्रित आये, और उनका वर्ग माने उनकी अपनी-अपनी प्रगति भी हुई, तो बना $अ^२ + ब^२$। जब तक ये दोनों अपना-अपना अहं सम्हालते हुए अलग व्यक्तित्व के साथ केवल धन चिन्ह से जुड़े हैं, कोई नई निर्मिती नहीं होती। अब वे दोनों अपना दृष्टिकोण बदल कर अलगाव छोड़ कर, यदि कोष्टक में संगठित हुए और उस पूरे कोष्टक का वर्ग किया गया तो बनता है $(अ + ब)^२$, जिस में से ही नया रूप बनता है, $अ^२ + २ अ ब + ब^२$। अब यह बीज गणित की शास्त्रीय प्रक्रिया है, किन्तु एक बात सबको समझ में आयेगी कि इस नये रूप में '२ अ ब' यह एक नई चीज पैदा हो गई, जो पहले नहीं थी। अ और ब दोनों जब एकात्म अस्तित्व (Entity) बन गये, तभी उन में से एक नये शक्ति का उद्गम

हुआ। यही किसी संगठन की आन्तरिक शक्ति (Inherent strength) होती है, जिसका निर्माण मात्र शक्तियों के जोड़ से नहीं, एकात्मता के कारण ही हो सकता है। संघ की शक्ति इस प्रक्रिया से उत्पन्न होने के कारण संख्या आदि आम नाप तौल के माप-दण्ड उसे लागू नहीं किये जा सकते। उसे तो उस के प्रभाव एवं परिणाम के आधार पर ही नापा जा सकेगा।

कार्यकर्ता का उच्चतम स्तर आवश्यक

इस सारे विवेचन से एक बात स्पष्ट होगी। तीन शक्तियां स्थायी हैं— (3 constant factors)। (१) सिद्धांतों की आन्तरिक शक्ति, (२) कार्यपद्धति की निजी शक्ति, (३) संगठन की एकात्म शक्ति। ये तीनों संघ के विषय में सुप्रतिष्ठित हो चुकी हैं। परिस्थिति के अनुसार बदलती रहने वाली मात्र चौथी शक्ति है। 'स्वयं-सेवक की अपनी निजी शक्ति'। स्वयंसेवक को सदैव प्रयास करना चाहिए कि इस चौथी शक्ति का स्तर उच्चत्तम (Maximum highest) रहे। इस की चिंता हम करें, बाकी बातों की चिंता अपने आप होगी। अतः आत्मपरीक्षण करते हुए, आवश्यक गुण एवं निष्ठा तथा कुशलता को बढ़ाते हुए हम अपना कर्त्तव्य पूरा करें। राष्ट्र का निर्माण समाचार पत्रों में आने वाली आलोचना, टिप्पणियों आदि से नहीं, तो राष्ट्रनिष्ठ एवं संगठित, नागरिकों के परिश्रम से ही हो सकता है।